अर्चना

(नवीनतम गीतों का संग्रह)

निराला

कला मन्दिर

दारागंज; इलाहाबाद ।

प्रकाशक
उमाशंकर सिंह

मूल्य २) रु०

मुद्रक
भार्गव प्रेस, प्रयाग।

स्वयोक्ति

प्रचलित कुल तालों से समन्वित 'अर्चना' नामक आधु-निक गीतों का संग्रह, 'ईश्वर की इच्छा से प्रस्तुत होकर', कला-कार कमला शंकर की तूलिका से नयन-मनोरञ्जक बनकर, 'पाठक-पाठिकाओं के सम्मुख उपस्थित है;' परीक्षण में उत्तीर्ण होने पर हम श्रम को सार्थक समझेंगे। यह पुस्तिका के बहिरंग व्यापारिक बात हुई, जिस पर 'आश्रम-जीवन' की दिन-चर्या, भोजन पान आदि निर्भर है, 'अन्तरङ्ग विषय यौवन से अतिक्रांति कवि के परलोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहाँ सम्मति का फल निष्काम में ही होगा।' रस-सिद्धि की परताल कीजिएगा तो कहना होगा कि हिंदी के भाषा-साहित्य में ज्ञानी और भक्त कवियों की पङ्क्ति की पङ्क्ति बैठी हुई है, जिनकी रचनाएँ साधारण जनों के जिह्वाग्र से अमृत की धारा बहा चुकी हैं, ऐसी अवस्था में लोकप्रियता की सफलता दुराशामात्र है। अतः यहाँ प्राचीन परम्परा से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि:—

भाव कुभाव अलख आलसहू;
राम जपत मंगल दिशि दसहू।

गीत के साथ गले का सम्बंध पहला है। प्रस्तुत गीतों की तद्वत् सफलता के न होने का कारण खड़ी बोली का पाठ; इसलिए गले से सफलता-पूर्वक न उतर जाना है। साधारण-जन देहातों में यह भाषा नहीं बोलते। उनके गले और

आधुनिक शरीर की नेमि अभी तक मन कर मश्रिण नहीं हुई। खड़ी बोली की गाड़ी के और चलते रहने की आव-श्यकता है; ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं। यथाशक्ति सुरचित शब्दों की शृंखला रक्खी गई है जो सहज ही उच्चरित हो जाय, जिससे आधुनिक गीतों की मेड़ें और स्वर-कम्पन प्राचीन शब्दोच्चारण की दीवारों को पार करके अपनी सत्यता पर समासीन हों। दो एक उदाहरण मुखोच्चारण वाले हम देते हैं:—

तुम्हारी छाँह है, छल है;
तुम्हारे बाल है, बल है;

× × ×

बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु;
पूछेगा सारा गाँव बन्धु!

ब्रजभाषा-संगीत में 'सा' और 'ना' के भिन्न उच्चार नहीं। खड़ी बोली में इसकी भी विपुलता है। 'भव-अर्णव की तरणी तरुणा' पद्य के 'ण' को 'न' उच्चारित करने पर खड़ी बोली का सिंगार बिगड़ जायगा, मगर ब्रजभाषा का संगीत-मय रूप खड़ा हो जायगा। चूंकि खड़ी बोली देश भर की साहित्यिक भाषा बन चुकी है, इसलिए ब्रजभाषा की अनुकूलता की पूर्वी-उच्चारण-पद्धति ही ग्राह्य नहीं। पञ्जाब आदि प्रान्त 'न' के उच्चारण में 'ण' की प्रधानता रखते हैं, इसलिए गीतों की ऐक-देशिकता नहीं रह सकी। उर्दू

गजलों में 'ए का एकान्त भाव है। अंग्रेजी में भी इसका उच्चारण नहीं है। उच्चारण-विज्ञान में ततद् भाषाओं की यह कमी है। हमारा अंग्रेजी से घनिष्ट सम्बन्ध था, जिसका परिचय, पढ़ाई की कोताही से जितना छिपाया गया था कविता के प्रकारण-प्रकाशन से उतना ही बताया गया। हम यहाँ केवल उच्चारण-विज्ञान की एक बात पर कह रहे हैं। हमारे अंग्रेजी के प्रशंसक कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, लखनऊ आदि के विद्वान मित्र अन्तर्जातीय अंग्रेजी के सम्बन्ध में पूर्ववत् हिमायती समझने की कृपा करें, साथ ही इतना जोड़े रहें कि हमारा हिंदी के साथ, संस्कृत आदि उसकी बहनों, माओं और माता-महियों से भी परिचय और श्रद्धाभाव है।

इस सत्योक्ति को विशालता न देकर रसानुग्रहणलिप्सुओं से हमारा कालिदास वाला भ्रमर-वेदन ही है; वे उसी तरह गीत पुष्पाधरों से लगें। शृंगार के लिए क्षमा:—

"चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्बस्वमधरम्,
वयं शाखान्वेषाण्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।"

कला मन्दिर
दारागञ्ज, प्रयाग।
२६. ८. ५०

—निराला

क्रम

६७. छोड़ दो, न छेड़ो टेढ़े,
६८. प्रिय के हाथ लगाये जागी,
६९. तार-तार निकल गये
७०. लघु-तटिनी, तट छाई कलियां;
७१. हार गई मैं तुम्हें जगा कर,
७२. तरणि तार दो अपर पार को
७३. गीत-गाये हैं मधुर स्वर
७४. हंसो अधरधरी हंसी
७५. कठिन यह संसार, कैसे विनिस्तार ?
७६. नील जलधि जल,
७७. क्या सुनाया गीत कोयल !
७८. भजन कर हरि के चरण, मन !
७९. अनमिल-अनमिल मिलते
८०. मुदे नयन, मिले प्राण,
८१. जननी मोह की रजनी
८२. उनसे संसार, भव-वैभव-द्वार
८३. मधुर स्वर तुमने बुलाया,
८४. गवना न करा।
८५. कैसे हुई हार तेरी निराकर,
८६. तुम आये कनकाचल छाये,
८७. खोले अमलिन जिस दिन
८८. तू दिगम्बर दिश्व है घर



कवि की कविता

अर्चना



१

भव-अर्णव की तरणी तरुणा।
बरसीं तुम नयनों से करुणा।

हार हारकर भी जो जीता,
सत्य तुम्हारी गाई गीता,
हुई असित जीवन की सीता,
दाव-दहन की श्रावण-वरुणा।
काटे कटी नहीं जो कारा
उसकी हुई मुक्ति की धारा,
वार वार से जो जन हारा।
उसकी सहज साधिका अरुणा।

❀

१२-१-५०

२

तन की, मन की, धन की हो तुम।
नव जागरण, शयन की हो तुम।

काम कामिनी कभी नहीं तुम,
सहज स्वामिनी सदा रहीं तुम,
स्वर्ग-दामिनी नदी बहीं तुम,
अनयन नयन-नयन की हो तुम।
मोह-पटल-मोचन आरोचन,
जीवन कभी नहीं जन - शोचन,
हास तुम्हारा पाश-विमोचन,
मुनि की मान, मनन की हो तुम।
गहरे गया, तुम्हें तब पाया,
रहीं अन्यथा कायिक छाया,
सत्य भास की केवल माया,
मेरे श्रवण-वचन की हो तुम।

❀

३

भज भिखारी, विश्वभरणा,
सदा अशरण-शरण-शरणा।

मार्ग है, पर नहीं आश्रय;
चलन है, पर निर्दलन-भय;
सहित-जीवन मरण निश्चय;
कह सतत जय-विजय-रणना।
पतित को सित हाथ गहकर
जो चलाती हैं सुपथ पर,
उन्हीं का तू मनन कर कर
पकड़ निश्शर-विश्वतरणा।
पार पारावार कर तू,
मर विभव से, अमर बर तू,
रे असुन्दर, सुघर घर तू,
एक तेरी तपोवरणा।



१२-१-५०

४

समझा जीवन की विजया हो।
रथी दोषरत को दलने को
विरथ व्रती पर सती दया हो।

पता न फिर भी मिला तुम्हारा,
खोज-खोजकर मानव हारा;
फिर भी तुम्हीं एक ध्रुवतारा,
नैश पथिक की पिक अभया हो।
ऋतुओं के आवर्त-विवर्तों,
लिये चलीं जो समतल-गर्तों,
खुलती हुई मर्त्य के पर्तों
कला सफल तुम विमलतया हो।

❀

१२-१-५०

५

पङ्क्ति-पङ्क्ति में मान तुम्हारा।
भुक्ति-मुक्ति में गान तुम्हारा।

आँख-आँख पर भाव बदलकर,
चमके हो रंग-छवि के पलभर,
पुनः खोलकर हृदय-कमल कर,
गन्ध बने, अभिधान तुम्हारा।
विपुल-पुलक-व्याकुल अलि के दल
मानव मधु के लिए समुत्कल,
उठे ज्योति के पंख खमण्डल,
अन्तस्तल अभियान तुम्हारा।
बैठे हृदयासन स्वतन्त्र-मन,
किया समाहित रूप-विचिन्तन,
नृम्न मृण्मरण बचे विचक्षण,
ज्ञान-ज्ञान शुभ स्थान तुम्हारा।



१३-१-५०

६

दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ, गहो हाथ।

हार गया जीवन-रण,
छोड़ गये साथी जन,
एकाकी, नैश-क्षण,
कण्टक-पथ, विगत पाथ।
देखा है, प्रात किरण
फूटी है मनोरमण,
कहा, तुम्ही को अशरण-
शरण, एक तुम्हीं साथ॥
जब तक शत मोह जाल
घेर रहे हैं कराल—
जीवन के विपुल व्याल,
मुक्त करो, विश्वगाथ!



७

भव-सागर से पार करो हे !
गह्वर से उद्धार करो हे !

कृमि से पतित जन्म होता है,
शिशु दुर्गन्ध-विकल रोता है,
ठोकर से जगता-सोता है,
प्रभु, उसका निर्वार करो हे !
पशुओं से सङ्कुल सन्तुल जग,
अहङ्कार के बाँध बंधा मग,
नहीं डाल भी जो बैठे खग,
ऐसे तल निस्तार करो हे !
विपुल काम के जाल बिछाकर,
जीते हैं जन जन को खाकर,
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर,
माया का संहार करो हे !



१३-१-५०

८

रमण मन के, मान के तन!
तुम्हीं जग के जीव-जीवन!

तुम्हीं में है महामाया,
जुड़ी छुटकर विश्वकाया;
कल्पतरु की कनक-छाया
तुम्हारे आनन्द-कानन।
तुम्हारी स्वर्सरित बहकर
हर रही है ताप दुस्तर;
तुम्हारे उर हैं अमर-मर,
दिवाकर, शशि, तारकागण।
तुम्हीं से ऋतु घूमती है,
नये कलि-दल चूमती है,
नये आसव झूमती है,
नये गीतों, नये नर्तन!



१४-१-५०

६

बन जाय भले शुक की उक से,
सुख की दुख से अवनी न बनी।
रुक जाय चली गति जो जग की,
जन से जन-जीवन की न ठनी।
बिगड़ी बनती बन जाय सही,
उगड़ी गड़ती गड़ जाय मही,
कटती पटती पट जाय तही,
तन की मन से तनती न तनी।
सब लोग भले भिड़ जांय यहाँ,
न चले जो गले छिड़ जांय यहाँ,
जो चढ़े सिर थे, चिढ़ जांय यहाँ,
जो गिरा उसकी न गिरी लवनी।



१४-१-५०

१०

लगी लगन, जगे नयन;
हटे दोष, छुटा अयन;

दुर्मिल जो कुछ ऊर्मिल
मिल-मिलकर हुआ अखिल,
धुल-धुलकर कुल पङ्किल
घुला एक रस अशयन।
छुटे सभी विषम बन्ध
विषमय वासना-अन्ध;
संशय की गई गन्ध;
शय-निश्चय किया चयन।
कामना विलीन हुई,—
सभी अर्थ क्षीण हुई,
उद्धत शिति दीन हुई,
दिखा नवल विश्व-वयन।



१४-१-५०

११

शिविर की शर्वरी
हिंस्र पशुओं भरी।

ऐसी दशा विश्व की विमल लोचनों
देखी, जगा त्रास, हृदय सङ्कोचनों
कांपा कि नाची निराशा दिगम्बरी।
मातः, किरण हाथ प्रातः बढ़ाया
कि भय के हृदय से पकड़कर छुड़ाया,
चपलता पर मिली अपल थल की तरी।



१५-१-५०

१२

आशा - आशा मरे
लोग देश के हरे !

देख पड़ा है जहाँ,
सभी झूठ है वहाँ,
भूख - प्यास सत्य,
होंठ सूख रहे हैं अरे !
आस कहाँ से बंधे ?
सांस कहाँ से सधे ?
एक एक दास,
मनस्काम कहाँ से सरे ?
रूप-नाम हैं नहीं,
कौन काम तो सही ?
मही-गगन एक,
कौन पैर तो यहाँ धरे ?



१५-१-५०

१३

छांह न छोड़ी,
तेरे पथ से उसने आस न तोड़ी।

शाख़-शाख़ पर सुमन खिले,
हवा-हवा से हिले मिले,
उर-उर फिर से भरे, छिले,
लेकिन उसने सुषमे, आंख न मोड़ी।
कहीं आव, कहीं है दुराव,
कहीं बढ़े चलने का चाव,
पाप-ताप लेने का दाव
कहीं बढ़े-बढ़े हाथ घात निगोड़ी।



१६-१-५०

१४

साधो मग डगमग पग,
तमस्तरण जागे जग।

शाप - शयन सो-सोकर,
हुए शीर्ण खो-खोकर,
अनवलाप रो-रोकर,
हुए चपल छलकर ठग।
खोलो जीवन - बन्धन,
तोलो अनमोल नयन,
प्राणों के पथ पावन,
रँगो रेणु के रँग रग।



१५

सोईं अँखियाँ :

तुम्हें खोजकर बाहर,

हारीं सखियाँ।

तिमिरवरण हुईं इसलिए,

पलकों के द्वार दे दिये,

अन्तर में अकपट,

हैं बाहर पखियाँ।

प्रार्थना, प्रभाती जैसी,

खुलें तुम्हारे लिए वैसी,

भरें सरस दर्शन से

ये कमरखियाँ।



१७-१-५०

१६

तिमिरदारण मिहिर दरसो।
ज्योति के कर अन्ध कारा-
गार जग का सजग परसो।

खो गया जीवन हमारा,
अन्धता से गत सहारा;
गात के सम्पात पर उत्थान
देकर प्राण बरसो।
क्षिप्रतर हो गति हमारी,
खुले प्रति-कलि-कुसुम-क्यारी,
सहज सौरभ से समीरण पर
सहस्रों किरण हरसो।

❀

१७-१-५०

१७

तुम जो सुथरे पथ उतरे हो,
सुमन खिले, पराग बिखरे, ओ!

ज्योतिश्छाय केश - मुख वाली,
तरुणी की सकरुण कलिका ली,
अधर - उरोज - सरोज - वनाली,
अश्रु-ओस की भेंट भरे हो।
पवन - मन्द - मृदु - गन्ध प्रवाहित,
मधु - मकरन्द सुमन-सर - गाहित,
छन्द-छन्द सरि-तरि उत्साहित,
अवनि - अनिल-अम्बर संवरे हो।
स्वर्ण-रेणु के उदयाचल - रवि,
दुपहर के खरतर ज्योतिश्छवि,
हे उर - उर के मुखर - मधुर कवि,
निःस्व विश्व को तुम्हीं वरे हो।



१७-१-५०

१८

जिनकी नहीं मानी कान
रही उनकी भी जी की।

जोबन की आन-बान
तभी दुनिया की फीकी।
राह कभी नहीं भूली तुम्हारी,
आँख से आँख की खाई कटारी,
छोड़ी जो बाँधी अटारी-अटारी
नई रोशनी, नई तान;
रही उनकी भी जी की,
जिनकी नहीं मानी कान।

❀

१७-१-५०

१६

दीप जलता रहा,
　　　हवा चलती रही;
नीर पलता रहा,
　　　बर्फ गलती रही।

जिस तरह आग
　　　वन में लगी हुई है,—
एकता में सरस
　　　भास है—दुई है,—
सत्य में भ्रम हुआ है,—
　　　छुईमुई है,
मान बढ़ता रहा,
　　　उम्र ढलती रही।
समय की बाट पर,
　　　हाट जैसे लगी,—
मोल चलता रहा,
　　　झोल जैसे दगी,—
पलक दल रुक गये,
　　　आँख जैसे लगी,—
काल खलता रहा,
　　　कला फलती रही।



१७—१—५०

२०

आंख लगाई
तुमसे जब से हमने चैन न पाई।

छल जो, प्राणों का सम्बल हुआ,
प्राणों का सम्बल निष्कल हुआ,
जङ्गल रमने का मङ्गल हुआ,
ज्योति जहाँ वहाँ अंधेरी घिर आई।
राह रही जहाँ वहाँ पन्थ न सूझा,
चाह रही जहाँ वहाँ एक न बूझा,
ऐसी तलवार चली कुनबा जूझा,
बन आई वह कि दूर हुई सगाई।



१८-१-५०

२१

दो सदा सत्सङ्ग मुझको।
अनृत से पीछा छुटे,
तन हो अमृत का रङ्ग. मुझको०

अशन-व्यसन तुले हुए हों,
खुले अपने ढङ्ग;
सत्य अभिधा साधना हो,
बाधना हो व्यङ्ग, मुझको०
लगें तुमसे तन - वचन-मन,
दूर रहे अनङ्ग;
बाढ़ के जल बढ़ूं, निर्मल-
मिलूं एक उमङ्ग, मुझको०
शान्त हों कुल धातुएँ ये,
बहे एक तरङ्ग,
रूप के गुण गगन चढ़कर,
मिलूं तुमसे, ब्रह्म, मुझको०

———

१८-१-५०

२२

चङ्ग चढ़ी थी हमारी,
तुम्हारी डोर न टूटी।

आँख लगी जो हमारी,
तुम्हारी कोर न छूटी।
जीवन था बलिहार,
तुम्हारा पार न आया,
हार हुई थी हमारी,
तुम्हारी जोत न फूटी।
ज्ञान गया ऐ हमारा,
तुम्हारा मान नया था,
हाथ उठा जो हमारा,
तुम्हारी रास न लूटी।
पैर बढ़े थे हमारे,
तुम्हारे द्वार खुले थे,
दर्शन चाहा हमारा,
तुम्हारी, जीवन-घूटी।



१८-१-५०

२३

नयन नहाये
जब से उसकी छबि में रूप बहाये।

साथ छुटा स्वजनों की,
पाँख फिर गई,
चली हुई पहली वह
राह घिर गई,
उमड़ा उर चलने को
जिस पुर आये।
कण्ठ नये स्वर से क्या
फूटकर खुला !
बदल गई आँख, विश्व-
रूप वह धुला !
मिथ्या के भास सभी,
कहाँ समाये !



१८-१-५०

२४

रङ्गभरी किस अङ्ग भरी हो ?
गातहरी किस हाथ बरी हो ?

जीवन के जागरण - शयन की,
श्याम-अरुण-सित-तरुण-नयन की,
गन्ध-कुसुम-शोभा उपवन की,
मानस-मानस में उतरी हो;
जोबन - जोबन से संवरी हो।
जैसे मैं बाजार में बिका
कौड़ी मोल; पूर्ण शून्य दिखा;
बाँह पकड़ने की साहसिका,
सागर से उत्तीर्ण तरी हो;
अल्पमूल्य की वृद्धिकरी हो।

❀

१६–१–५०

२५

सरल तार, नवल गान,
नव - नव स्वर के वितान।

जैसे नव ऋतु, नव कलि,
आकुल नव-नव अञ्जलि,
गुञ्जित - अलि - कुसुमावलि,
नव-नव - मधु - गन्ध - पान।
नव रस के कलश उठे,
जैसे फल के, असु के,—
नव यौवन के वसु के
नव जीवन के प्रदान।
उठे उत्स, उत्सुक मन,
देखे वह मुक्त गगन,
मुक्त धरा, मुक्तानन,
मिला दे अदिव्य प्राण।



१६-१-५०

२६

पार संसार के,
विश्व के हार के,
दुरित संभार के
नाश हो चार के।
सविध हो वैतरण,
सुकृत-कारण-करण,
अरण-वारण-वरण,
शरण सञ्चार के।
तान वह छेड़ दी
सुमन की, पेड़ की,
तीन की, डेढ़ की,
तार के हार के!
वार वनिता विनत,
आ गये तथागत,
अप्रहत, स्नेह-रत,
मुक्ति के द्वार के।

❀

१६-१-५०

२७

प्रथम वन्दूं पद विनिर्मल,
परा-पथ पाथेय पुष्कल।

गणित अगणित नूपुरों के,
ध्वनित सुन्दर स्वर सुरों के,
सुरञ्जन गुञ्जन पुरों के,
कला निस्तल की समुच्छल।
वासना के विषम शर से
बिंधे को जो छुआ कर से,
शत समुत्सुक उत्स बरसे,
गात गाथा हुई उज्ज्वल।
खुली अन्त:किरण सुन्दर,
दिखे गृह, वन, सरित, सागर,
हँसे खुलकर हार-बाहर,
अजन जन के बने मङ्गल।

❀

२०-१-५०

२८

पैर उठे, हवा चली।
उर-उर की खिली कली।

शाख - शाख तनी तान,
विपिन-विपिन खिले गान,
खिंचे नयन-नयन प्राण,
गन्ध-गन्ध सिंची गली।
पवन-पवन पावन है
जीवन - वन सावन है,
जन-जन मनभावन है,
आशा सुखशयन-पली।
दूर हुआ कलुष - भेद,
कण्टके निस्पन्ध छेद,
खुले सर्ग, दिव्य वेद,
माया हो गई भली।

❀

२०-१-५०

२६

और न अब भरमाओ,
पौर आओ, तुम आओ !

जी की जो तुमसे चटकी है,
बुद्धि-शुद्धि भटकी-भटकी है;
और जनों की लट अटकी है ?
ऐसे अकेले बचाओ,
छोड़कर दूर न जाओ।
खाली पूरे हाथ गये हैं,
ऊपर नये-नये उनये हैं,
सुख से मिलें जो दुख-दुनये हैं,
बेर न वीर लगाओ,
बढ़ाकर हाथ बटाओ !



२०-१-५०

देने गये बचने की
साँस, आस ले न गये।

रह-रहकर मारे पर
यौवन के ज्वर के शर
नव-नव कल-कोमल कर
उठे हुए जो न नये।
फागुन के खुले फाग
गाये जो सिन्धु-राग
दल के दल भरमाये
पातों से जो न छुये।
गले - गले मिलने की,
कटी हुई सिलने की,
पड़ी हुई झिलने की,
आ बीती खड़े-खड़े।



२१—१–५०

३१

अलि की गूंज चली द्रुम-कुञ्जों।
मधु के फूटे अधर-अधर धर।
भरकर मुदे प्रथम गुञ्जित-स्वर
छाया के प्राणों के ऊपर,
पीली ज्वाल पुञ्ज की पुञ्जों।
उल्टी-सीधी बात सँवरकर
काटे आये हाथ उतरकर,
बैठे साहस के आसन पर
भुज-भुज के गुण गाये गुञ्जों।



२१-१-५०

३२

आज प्रथम गाई पिक पञ्चम।
गूँजा है मरु विपिन मनोरम।

मरुत-प्रवाह, कुसुम-तरु फूले,
बौर-बौर पर भौंरे भूले,
पात-गात के प्रमुदित झूले,
छाई सुरभि चतुर्दिक उत्तम।
आँखों से बरसे ज्योतिःकण,
परसे उन्मन-उन्मन उपवन,
खुला धरा का पराकृष्ट तन,
फूटा ज्ञान गीतमय सत्तम।
प्रथम वर्ष की पांख खुली है,
शाख-शाख किसलयों तुली है,
एक और माधुरी घुली है,
गीत-गन्ध-रस-वर्णों अनुपम।

❀

२१-१-५०

३३

फूटे हैं आमों में बौर,
भौंर वन - वन टूटे हैं।
होली मची ठौर - ठौर,
सभी बन्धन छूटे हैं।

फागुन के रंग राग,
बाग-वन फाग मचा है,
भर गये मोती के झाग,
जनों के मन लूटे हैं।
माथे अबीर से लाल,
गाल सेंदुर के देखे,
आँखें हुई हैं गुलाल,
गेरू के ढेले कूटे हैं।



२१-१-५०

३६

केशर की, कलि की पिचकारी :
पात-पात की गात संवारी।

राग - पराग - कपोल किये हैं,
लाल - गुलाल अमोल लिये हैं,
तरु - तरु के तन खोल दिये हैं,
आरती जोत - उदोत उतारी—
गन्ध - पवन की धूप धवारी।
गाये खग-कुल-कण्ठ गीत शत,
सङ्ग मृदङ्ग तरङ्ग - तीर - हत,
भजन मनोरञ्जन - रत अविरत,
राग-राग को फलित किया री—
विकल-अङ्ग कल गगन - विहारी।



२२–१–५०

३७

बांधो न नाव इस ठांव, बन्धु !
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु !

यह घाट वही जिस पर हंसकर,
वह कभी नहाती थी धंसकर,
आँखें रह जाती थीं फंसकर,
कंपते थे दोनों पांव, बन्धु !
वह हंसी बहुत कुछ कहती थी,
फिर भी अपने में रहती थी,
सबकी सुनती थी, सहती थी,
देती थी सबके दांव, बन्धु !



२३-१-५०

३८

गिरते जीवन को उठा दिया
तुमने कितना धन लुटा दिया !

सूखी आशा की विषम फांस,
खोलकर साफ की गांस-गांस,
छन-छन, दिन-दिन, फिर मास-मास,
मन की उलझन से छुटा दिया।
बैठाला ज्योतिर्मुख करकर,
खोली छबि तमस्तोम हरकर,
मानस को मानस में भरकर,
जन को जगती से खुटा दिया।
पञ्जर के निर्जर के रथ से,
सन्तुलिता को इति से, अथ से,
बरने को, वारण के पथ से,
काले तारे को टुटा दिया।

❀

२३-१-५०

३९

धीरे-धीरे हंसकर आईं
प्राणों की जर्जर परछाईं।

छाया-पथ घनतर से घनतम,
होता जो गया पङ्क-कर्दम,
ढकता रवि आँखों से सत्तम,
मृत्यु की प्रथम आभा भाईं।
क्या गले लगाना है बढ़कर,
क्या अलख जगाना अड़-अड़कर,
क्या लहराना है झड़-झड़कर,
जैसे तुम कहकर मुसकाईं।
पिछले कुल खेल समाप्त हुए,
जो नहीं मिले वर प्राप्त हुए,
बीसों विष जैसे व्याप्त हुए,
फिर भी न कहीं तुम घबराईं।



४०

निविड़ विपिन, पथ अराल;
भरे हिंस्त्र जन्तु-व्याल।

मारे कर अन्धकार,
बढ़ता है अनिर्वार,
द्रुम-वितान, नहीं पार,
कैसा है जटिल जाल।
नहीं कहीं सुजलाशय,
सुस्थल, गृह, देवालय,
जगता है केवल भय,
केवल छाया विशाल।
अन्धकार के दृढ़ कर
बंधा जा रहा जर्जर,
तन उन्मीलन निःस्वर,
मन्द्र-चरण मरण-ताल।



२३-१-५०

४१

सुरतरु वर शाखा
खिली पुष्प-भाषा।

मीलित नयनों जपकर
तन से क्षण-क्षण तपकर
तनु के अनुताप प्रखर,
पूरी अभिलाषा।
बरसे नव वारिद वर,
द्रुम पल्लव-कलि-फलभर
आनत हैं अवनी पर
जैसी तुम आशा।
भावों के दल, ध्वनि, रस
भरे अधर-अधर सुवश,
उघरे, उर-मधुर परस,
हँसी केश-पाशा।



२३–१–५०

४२

वेदना बनी :
मेरी अवनी।

कठिन-कठिन हुए मृदुल
पद-कमल विपद सङ्कुल
भूमि हुई शयन-तुमुल
कण्टकों घनी।
तुमने जो गही बांह,
वारिद की हुई छांह,
नारी से हुई नाह,
सुकृत जीवनी।
पार करो यह सागर
दीन के लिए दुस्तर,
करुणामयि, गहकर कर,
ज्योतिर्धमनी।



२४-१-५०

४३

आँख बचाते हो
तो क्या आते हो ?

काम हमारा बिगड़ गया
दिखा रूप जब कभी नया ;
कहाँ तुम्हारी महा दया ?
क्या क्या समझाते हो ?—
आँख बचाते हो ।
लीक छोड़कर कहाँ चलूं ?
दाने के बिना क्या तलूं ?
फूला जब नहीं क्या फलूं ?
क्या हाथ बटाते हो ?—
आँख बचाते हो ।



२४-१-५०

४४

हरि का मन से गुणगाण करो,
तुम और गुमान करो, न करो।
स्वर-गङ्गा का जल पान करो,
तुम अन्य विधान करो, न करो।

निशिवासर ईश्वर-ध्यान करो,
तुम अन्य विमान करो, न करो।
ठग को जग-जीवन-दान करो,
तुम अन्य प्रदान करो, न करो।
दुख की निशि का अवसान करो,
उपमा, उपमान करो, न करो।
प्रिय नाह की बांह का थान करो,
तुम और वितान करो, न करो।



२४-१-५०

४५

खुलकर गिरती है
जो, उड़ती फिरती है।

ऐसी ही एक बात चलती है,
घात खड़ी-खड़ी हाथ मलती है,
तभी सह-सही दाल गलती है
(जो) तिरती-तिरती है।
काम इशारा नहीं आया तो
जैसी माया हो, छाया हो।
मुसकाया, मन को भाया जो,
उससे सिरती है।
विगलित जो हुआ दाप से दर
प्राणों को मिला शाप से वर;
गिरि के उर से मृदु-मन्द्र-स्वर,
सरिता झिरती है।



२४-१-५०

४६

तन, मन, धन वारे हैं:
परम - रमण, पाप - शमन,
स्थावर - जङ्गम - जीवन;
उद्दीपन, सन्दीपन,
सुनयन रतनारे हैं।
उनके वर रहे अमर
स्वर्ग - धरा पर सञ्चर,
अक्षर - अक्षर अक्षर,
असुर अमित मारे हैं।
दूर हुआ दुरित, दोष,
गूंजा है विजय - घोष,
भक्तों के आशुतोष,
नभ - नभ के तारे हैं।

❀

२५-१-५०

४७

वे कह जो गये कल आने को,
सखि, बीत गये कितने कल्पों।
खग-पांख-मढी मृग-आँख लगी,
अनुराग जगी दुख के तल्पों।

उनकी जो रहीं, बस की न कही,
रस की रसना अशना न रही,
विपरीत की टेक न एक सही,
दिन बीत चले अल्पों-अल्पों।
उनकी जय उर-उर भय भसका,
उनके मग में जग-जय मसका,
उनके डग से कुल क्षय धसका,
पर दरस गये जल्पों-जल्पों।



२५-१-५०

४८

मानव का मन शान्त करो हे!
काम, क्रोध, मद, लोभ दम्भ से
जीवन को एकान्त करो हे।

हिलें वासना-कृष्णा-तृष्णा उर,
खिलें विटप छाया-जल-सुमधुर,
गूंजे अलि-गुञ्जन के नूपुर,
निज-पुर-सीमा-प्रान्त करो हे।
विहग-विहग नव गगन हिला दे,
गान खुले-कण्ठ-स्वर गा दे,
नभ-नभ कानन-कानन छा दे,
ऐसे तुम निष्क्रान्त करो हे।
रूखे-मुख की रेखा सोये,
फूट-फूटकर माया रोये,
मानस-सलिल-मलिनता धोये,
प्रति मग से आक्रान्त करो हे!



२५-१-५०

४६

तुम ही हुए रखवाल
तो उसका कौन न होगा ?
फूली-फली तरु-डाल
तो उसका कौन न होगा ?

कान पड़ी है खटाई
तो उसकी कौन मिताई,
और हिये जयमाल
तो उसका कौन न होगा ?
जिसने किया है किनारा
उसीका दलबल हारा,
और हुए तुम ढाल
तो उसका कौन न होगा ?

❀

२३-१-५०

५०

नव तन कनक-किरण फूटी है।
दुर्जय भय-बाधा छूटी है।

प्रात धवल-कलि गात निरामय
मधु-मकरन्द-गन्ध विशदाशय,
सुमन-सुमन, वन-मन, अमरण-जय,
सिर पर स्वर्गाशिस टूटी है।
वन के तरु की कनक-बान की
वल्ली फैली तरुण-प्राण की,
निर्जल-तरु-उलझे वितान की
गत-युग की गाथा छूटी है।

❀

२४–१–५०

५१

घन तम से आवृत धरणी है;
तुमुल तरङ्गों की तरणी है।

मन्दिर में बन्दी हैं चारण,
चिघर रहे हैं वन में वारण,
रोता है बालक निष्कारण,
विना-सरण-सारण भरणी है।
शत संहत आवर्त-विवर्तों
जल पछाड़ खाता है पर्तों,
उठते हैं पहाड़, फिर गर्तों
धसते हैं, मारण-रजनी है।
जीर्ण - शीर्ण होकर जीती है,
जीवन में रहकर रीती है,
मन की पावनता पीती है,
ऐसी यह अकाम सरणी है।

❀

५२

नव जीवन की बीन बजाई।
प्रात रागिनी क्षीण बजाई।

घर-घर नये-नये मुख, नव कर,
भरकर नये-नये गुञ्जित स्वर,
नर को किया नरोत्तम का वर,
मींड़ अनीड़ नवीन बजाई।
वातायन-वातायन के मुख
खोली कला विलोकन-उत्सुक,
लोक - लोक आलोक, दूर दुख,
आगम-रीति प्रवीण बजाई।



२४-१-५०

५२

पाप तुम्हारे पांव पड़ा था,
हाथ जोड़कर ठांव खड़ा था।

विगत युगों का जङ्ग लगा था,
पहिया चलता न था, रुका था,
रगड़ कड़ी की थी, सँवरा था,
पथ चलने का काम बड़ा था।
जड़ता की जड़तक मारी थी,
ऐसी जगने की बारी थी,
मञ्ज़िल भी थककर हारी थी,
ऐसे अपने नाँव चढ़ा था।
सभी उहार उतार दिये थे,
फिरसे पट्टे श्वेत सिये थे,
तीन-तीन के एक किये थे,
किसी एक अपवर्ग मढ़ा था।



२५-१-५०

५४

क्यों मुझको तुम भूल गये हो ?
काट डाल क्या, मूल गये हो।

रवि की तीव्र किरण से पीकर
जलता था जब विश्व प्रखरतर,
तुम मेरे छाया के तरु पर
डाल पवन से धूल गये हो।
विफल हुई साधना देह की,
असफल आराधना स्नेह की,
विना दीप की रात गेह की,
उल्टे फलकर फूल गये हो।
नहीं ज्ञात, उत्पात हुआ क्यों,
ऐसा निष्ठुर घात हुआ क्यों,
विमल-गात अस्नात हुआ क्यों,
बढ़ने को प्रतिकूल गये हो ?



०५-१-५०

५५

तुम से जो मिले नयन,
दूर हुए दुरित-शयन।

खिले अङ्ग-अङ्ग अमल
सर के प्रातः - शतदल
पावन - पवनोत्कल - पल,
अलक - मन्द-गन्ध-वयन।
खग-कुल - कल-कण्ठ-राग
फूटे नग, नगर, बाग,
अधर - विधुर छुटे दाग,
कर-कर सित-सुमन-चयन।
अखिल के न खिले हुए,
खले हिले - मिले हुए,
एक ताग सिले हुए
आये हो एक अयन।

*

२५-१-५०

वन-वन के झरे पात,
नग्न हुई विजन-गात।

जैसे छाया के क्षण
हंसा किसी को उपवन,
अब कर-पुट विज्ञापन,
क्षमापन, प्रपन्न प्रात।
करुणा के दान-मान
फूटे नव पत्र-गान,
उपवन-उपवन समान
नवल-स्वर्ग-रश्मि-जात।



२५-१-५०

५७

तुमने स्वर के आलोक-ढले
गाये हैं गाने गले-गले।

बचकर भव की भंगुरता से
रागों के सुमनों के बासे
रंग-रेणु-गन्ध के वे भासे
मीड़ों के नीड़ों से निकले।
नश्वरता पर सस्वर छाये
जैसे पल्लव के दल आये,
वन के वसन्त के मन भाये
जैसे जन बैठे छाँह-तले।
बोले, अब अपना पथ सूझा,
भूला जीवन-प्रकरण बूझा,
प्रबल से प्रबलतर अरि जूझा,
रोके जो सहसा चक्र चले



६–२–५०

५८

लिया- दिया तुमसे मेरा था,
दुनिया सपने का डेरा था।

अपने चक्कर से कुल कट गये,
काम की कला से हट हट गये,
छापे से तुम्हीं निपट पट गये,
उलटा जो सीधा ढेरा था।
सही आंख तुम्हीं दिखे पहले,
नहले पर तुम्हीं रहे दहले,
बहते थे जितने थे बहले,
किसी जीभ तुमको टेरा था।
तभी किनारे लगा दिया है,
जहाँ करारा गिरा दिया है,
कैसा तुमने तरा दिया है,
गहरा भवरों का फेरा था।

❀

६-२-५०

५६

गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को।

चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे,
कण्ठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल, देखो।
भर गया है ज़हर से
संसार जैसे हार खाकर,
देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर,
बुझ गई है लौ पृथा की,
जल उठो फिर सींचने को।



६–२–५०

६०

सहज-सहज कर दो :
सकलश रस भर दो ।

ठग ठगकर मन को
लूट गये धन को,
ऐसा असमंजस, धिक
जीवन-यौवन को :
निर्भर हूँ, वर दो ।
जगज्जाल छाया,
माया ही माया,
सूझता नहीं है पथ
अन्धकार आया;
तिमिर-भेद शर दो ।

❀

६-२-५०

६१

ग्रासना - समासीना
महती जगती दीना।

जलद-पयोधर - भारा,
रवि-शशि-तारक-हारा,
व्योम - मुखच्छबिसारा
शतधारा पथ - हीना।
ऋषिकुल-कल-कण्ठस्तुति,
दिव्य-शस्य-सकलाहुति,
निगमागम - शास्त्रश्रुति
रासभ - वासव-वीणा।



६-२-५०

६२

ये दुख के दिन
काटे हैं जिसने
गिन-गिनकर
पल-छिन, तिन-तिन।
आँसू की लड़ के मोती के
हार पिरोये,
गले डालकर प्रियतम के
लखने को शशिमुख
दुःखनिशा में
उज्ज्वल अमलिन।

❀

६-२-५०

६३

हार तुमसे बनी है जय,
जीत की जो चक्षु में क्षय।

विषम कम्पन बली के उर,
सदुन्मोचन छली के पुर,
कामिनी के अकल नूपुर,
भामिनी के हृदय में भय।
रच गये जो अधर अनरुण,
बच गये जो विरह-मकरुण,
अनसुने जो सच गये सुन,
जो न पाया, मिला आशय।
क्षणिकता चिर-धनिक की है,
पणिकता जग-वणिक की है
राशि जैसे कणिक की है,
वाम जैसे है निरामय।



७-२-५०

६४

अट नहीं रही है
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।

कहीं सांस लेते हो,
घर - घर भर देते हो,
उड़ने को नभ में तुम
पर-पर कर देते हो,
आँख हटाता हूँ तो
हट नहीं रही है।
पत्तों से लदी डाल
कहीं हरी, कहीं लाल,
कहीं पड़ी है उर में
मन्द - गन्ध-पुष्प-माल,
पाट - पाट शोभा-श्री
पट नहीं रही है।

❀

७-२-५०

६५

कुञ्ज-कुञ्ज कोयल बोली है,
स्वर की मादकता घोली है।
कांपा है घन पल्लव-कानन,
गूँजी गुहा श्रवण - उन्मादन,
तने सहज छादन-आच्छादन,
नस ने रस-वशता तोली है।
गृह-वन जरा-मरण से जीकर
प्राणों का आसव पी-पीकर
झरे पराग-गन्ध-मधु-शीकर,
सुरभित पल्लव की चोली है।
तारक-तनु रवि के कर सञ्चित,
नियमित अभिसारक जीवित सित,
आमद - पद - भर मञ्जु -गुञ्जरित
अलिका की कलिका डोली है।



६-२-५०

६६

कौन गुमान करो ज़िन्दगी का ?
जो कुछ है कुल मान उन्हींका।
बाँधे हुए घर-बार तुम्हारे,
माथे है नील का टीका,
दाग़-दाग़ कुल अङ्ग स्याह हैं,
रङ्ग रहा है फीका—
तुम्हारा कोई न जी का।
एक भरोसा, एक सहारा,
वारा - न्यारा बन्दगी का,
ज्ञान गठा कब, मान हुआ कब,
ध्यान गया जब पी का,
बना कब आन किसीका ?



७-२-५०

६७

छोड़ दो, न छेड़ो टेढ़े,
कब बसे तुम्हारे खेड़े ?
यह राह तुम्हारी कब की
जिसको समझे हम सब की ?
गम खा जाते हैं अब की,
तुम ख़बर करो इस ढब की,
हम नहीं हाथ के पेड़े।
सब जन आते जाते हैं,
हँसते हैं, बतलाते हैं,
आपस में इठलाते हैं,
अपना मन बहलाते हैं;
तुमको खेने हैं बेड़े।

❀

७-२-५० 

६८

प्रिय के हाथ लगाये जागी,
ऐसी मैं सो गई अभागी।
हरसिंगार के फूल झर गये,
कनक रश्मि से द्वार भर गये,
चिड़ियों के कल कण्ठ मर गये,
भस्म रमाकर चला विरागी।
शिशु-गण अपने पाठ हुए रत,
गृही निपुण गृह के कर्मों नत,
गृहिणी स्नान-ध्यान को उद्यत,
भिक्षुक ने घर भिक्षा मागी।

❀

७-२-५०

७०

लघु तटिनी, तट छाईं कलियाँ;
गूँजीं अलियों की आवलियाँ।
तरियों की परियाँ हैं जल पर,
गाती हैं खग-कुल-कल-कल-स्वर,
तिरती हैं सुख-सुकर पङ्ख-भर,
रूम घूमकर सुघर मछलियाँ।
जल-थल-नभ आनन्द-भास है,
किसी विश्वमय का विकास है,
सलिल-अनिल ऊर्मिल विलास है,
निस्तल-गीति-प्रीति की तलियाँ।
परिचय से सञ्चित सारा जग,
राग-राग से जीवन जगमग,
सुख के उठते हैं पुलकित डग,
रह जाती हैं अपल पुतलियाँ।



१०-२-५०

७१

हार गई मैं तुम्हें जगाकर,
धूप चढ़ी प्रखर से प्रखरतर।
वर्जन के जो वज्र-द्वार हैं,
क्या खुलने के भी किंवार हैं?
प्राण पवन से पार-पार हैं,
जैसे दिनकर निष्कर, निश्शर।
पञ्च विपञ्ची से विहीन हैं;
जैसे जन आयु से क्षीण हैं;
सभी विरोधाभास पीन हैं,
असमय के जैसे धाराधर।



१०–२–५०

७२

तरणि तार दो
अपर पार को ।
खे - खेकर थके हाथ,
कोई भी नहीं साथ,
श्रम-शीकर-भरा माथ,
बीच--धार, ओ !
पार किया तो कानन;
मुरझाया जो आनन,
आओ हे निर्वारण,
बिपत वार लो ।
पड़ी भंवर-बीच नाव,
भूले हैं सभी दांव,
रुकता है नहीं राव—
सलिल--सार, ओ !



१०-२-५०

७२

गीत गाये हैं मधुर-स्वर,
किरण-कर वीणा नवलतर।
ताकते हैं लोग, आये
कहाँ तुम, कैसे सुहाये,
अनन्तर अन्तर समाये,
कठिन छिपकर, सहज खुलकर।
कान्त है कान्तार दुर्मिल,
सुघर स्वर से अनिल ऊर्मिल,
मीड़ से शत-मोह घूर्मिल,
तार से तारक, कलाधर।
छा गया जैसे अखिल भव,
द्रुमों से जागा यथा दव,
ऋतु-कुसुम से गन्ध, आसव,
उषा से जैसे 'कनक-कर।



१०–२–५०

७४

हंसो अधर - धरी हंसी,
बसो प्राण - प्राण - बसी ।
करुणा के रस उर्वर
कर दो ऊसर - ऊसर
दुख की सन्ध्या धूसर
हीरक - तारकों - कसी ।
मोह छोह से भर दो,
दिशा देश के स्वर हो,
परास्पर्श दो पर को,
शरण वरण-लास-लसी ।
चरण मरण - शयन - शीर्ण,
नयन ज्ञान - किरण - कीर्ण,
स्नेह देह - दहन - दीर्ण,
रहन विश्व - वास - फंसी ।

❁

१०-२-५०

७५

कठिन यह संसार, कैसे विनिस्तार ?
ऊर्मि का पाथार कैसे करे पार ?
अयुत भङ्गुर तरङ्गों टूटता सिन्धु,
तुमुल-जल-बल-भार, क्षार-तल, कुल विन्दु,
तट-विटप लुप्त, केवल सलिल-संहार।
ऋतु-वलय सकल शय नाचते हैं यहाँ,
देख पड़ता नहीं, आँचते हैं यहाँ,
सत्य में झूठ, कुहरा-भरा संभार।



१०-२-५०

७६

नील जलधि-जल,
नील गगन-तल,
नील कमल-दल,
नील नयन द्वय।
नील मृत्ति पर
नील मृत्यु-शर,
नील अनिल-कर,
नील निलय-लय।
नील मोर के
नील नृत्य रे,
नील कृत्य से
नील शवाशय।
नील कुसुम-मग,
नील नग्न-नग,
नील शील-जग,
नील कराभय।

❋

११-२-५०

७७

क्या सुनाया गीत, कोयल !
समय के समधीत, कोयल !
मञ्जरित हैं कुञ्ज, कानन,
जानपद के पुञ्ज - आनन,
वर्ष के कर हर्ष के शर
बिंध गया है शीत, कोयल !
कामना के नयन वञ्चित,
रुचिर रचनाकरों - सञ्चित,
मधुर मधु का तथ्य, अथवा
पथ्य है नवनीत, कोयल !



११-२-५०

७८

भजन कर हरि के चरण, मन !
पार कर मायावरण, मन !
कलुष के कर से गिरे हैं
देह-क्रम तेरे फिरे हैं,
विपथ के रथ से उतरकर
बन शरण का उपकरण, मन !
अन्यथा है वन्य कारा,
प्रबल पावस, मध्य धारा,
टूटते तन से पछड़कर
उखड़ जायेगा तरण, मन !



११-२-५०

७९

अनमिल - अनमिल मिलते
प्राण, गीत तो खिलते।
उड़ती हैं छुट - छुटकर
आँखें मन के नभ पर
और किसी मणि के घर
झिलमिल सुख से हिलते।
किससे मैं कहूँ व्यथा—
अपनी जित-विजित कथा ?
होगी भी अनन्यथा
छन की लौ के झिलते ?



११-२-५०

८०

मुदे नयन, मिले प्राण,
हो गया निशावसान ।
जगते-जग के कलरव
सोये, उर के उत्सव
मन्द हुए स्पन्दित जव,
मिले कण्ठ-कण्ठ गान ।
एक हुए दोनों वर
ईश्वर के अविनश्वर,
पार हुए घर-प्रान्तर,
अन्तर में निरवमान !
ज्ञान-सूत्र में मिलकर
स्वर्ग से चढ़े ऊपर,
जहाँ नहीं नर, न अमर,—
सुन्दरता का विधान ।

❀

१२–२–५०

जननि, मोह की रजनी
पार कर गई अवनी।
तोरण - तोरण साजे,
मङ्गल - बाजे बाजे,
जन-गण - जीवन राजे,
महिलाएँ बनीठनीं।
साड़ी के खिले मोर,
रेशम के हिले छोर,
शिञ्जित हैं बोर - बोर,
चमकी है कनी - कनी।
क्षिति पर हैं लौह-यान,
गगन विकल हैं विमान,
थल पर है उथल-पुथल,
जल पर तैरी तरणी।



१२-२-५०

उनसे संसार,
भव - वैभव - द्वार।
समझो वर निर्जर रण;
करो बार बार स्मरण,
निराकार करण-हरण,
शरण, मरणपार।
रवि की छवि के प्रभात,
ज्योति के अदृश्य गात,
गन्ध-मन्द-पवन-जात,
उर - उर के हार।



१२–२–५०

मधुर स्वर तुमने बुलाया,
छद्म से जो मरण आया।
बो गई विष वायु पच्छिम,
मेघ के मद हुई रिमझिम,
रागिनी में मृत्युः द्रिमद्रिम,
तान में अवसान छाया।
चरण की गति में विरत लय,
सांस में अवकाश का क्षय,
सुषमता में असम सञ्चय,
वरण में निश्शरण गाया।



१२-२-५०

गवना न करा।
खाली पैरों रास्ता न चला।
कंकरीली राहें न कटेंगी,
बेपर की बातें न पटेंगी,
काली मेघनियाँ न फटेंगीं,
ऐसे ऐसे तू डग न भरा।
कुछ भी न बता तू रहा पता,
सपने-सपने दे रहा धता,
जो पूरा-पूरा माल-मता,
मुरझा न जायगा बाग़ हरा।



१२-२-५०

कैसे हुई हार तेरी निराकार,
गगन के तारकों बन्द हैं कुल द्वार ?
दुर्ग दुर्धर्ष यह तोड़ता है कौन ?
प्रश्न के पत्र, उत्तर प्रकृति है मौन ;
पवन इङ्गित कर रहा है—निकल पार ।
सलिल की ऊर्मियों हथेली मारकर
सरिता तुझे कह रही है कि कारगर
बिपत से वारकर जत्र पकड़ पतवार ।
क्षिति के चले सीत कहते विनतभाव—
जीवन विना अन्न के है विपन्नाव ;
कैसे दुसह द्वार से करे निर्वार ?



१३–२–५०

तुम आये, कनकाचल छाये,
ऐ नव-नव किसलय फैलाये।
शतशत वल्लरियाँ नत-मस्तक,
झुककर पुष्पाधर मुसकाये।
परिणय अगणन यौवन-उपवन,
सङ्कुल फल के गुञ्जन भाये;
मधु के पावन सावन सरसे,
परसे जीवन-वन मुरझाये।
रवि-शशि-मण्डल, तारा-ग्रह-दल,
फिरते पल-पल दृग-दृग छाये,
मूर्छित गिरकर जो अनृत अकर,
सुषमा के वर सर लहराये।



१३-२-५०

खोले अमलिन जिस दिन
नयन विश्वजन के,
दिखी भारती की छबि,
बिके लोग धन के।
तन की छुट गई सुरत,
रुके चरण मायामत,
रोग-शोक-लोक, वितत
उठे नये रण के।
तटिनी के तीर खड़े
खम्भे थे, वीर बड़े,
मेरु के करार चढ़े,
श्रम के यौवन के।



१३-२-५०

तू दिगम्बर, विश्व है घर
ज्ञान तेरा सहज वर कर।
शोकसारण करणकारण,
तरणतारण निष्णु-शङ्कर।
अमित सित के असित चित के,
त्वरित हित के राम वा नर,
लक्षणासन सङ्ग लक्ष्मण
वासनारण-प्रहर-खर-शर।
गति अनाहत, तू सखा मत,
सहज संयत, रे अकातर,
ध्यान के सम्मान में रत
ज्ञान के शतपथ-चराचर।



१३-२-५०

कौन फिर तुझको बरेगा
तू न जब उस पथ मरेगा ?
निखिल के शर शत्रु हनकर,
क्षत भले कर क्षत्र बनकर,
तू चला जबतक न तनकर,—
धर्म का ध्वज कर न लेगा।
देश के अवशेष के रण
शमन के प्रहरण दिया तन
तो हुआ तू शरणशारण,
विश्व तेरे यश भरेगा।
मिलेंगे जन अशङ्कित मन
खिलेंगे निश्शेष-चेतन,
विषद - वासों के विभूषण,
चरण के तल, तू तरेगा।



१४–२–५०

हरिण - नयन हरि ने छीने हैं।
पावन रँग रग-रग भीने हैं।
जिती न-चहती माया महती,
बनी भावना सहती - सहती,
भीतर धसी साधना बहती,
सिले छेद जो तन सीने हैं।
जाने जन जो मरे जिये थे,
फिरे सुकृत जो लिये दिये थे,
हुए हिये जो मान किये थे,
पटे सुहसन, वसन भीने हैं।



१४-२-५०

हुए पार द्वार - द्वार,
कहीं मिला नहीं तार।
विश्व के समाराधन
हंसे देखकर उस क्षण,
चेतन जनगण अचेत
समझे क्या जीत हार ?
कांटों से विक्षत पद,
सभी लोग अवशम्वद,
सूख गया जैसे नद
सुफलभार सुजलधार।
केवल है जन्तु-कवल
गई तन्तु नवल-धवल,
छुटा छोर का सम्वल,
टूटा उर-सुघर हार।



१४-२-५०

पथ पर बेमौत न मर,
श्रम कर तू विश्रम-कर।
उठा उठा करद हाथ,
दे दे तू वरद साथ,
जग के इस सजग प्रात
पात-पात किरनें भर।
बढ़ा बढ़ा कर के तन,
जगा जगा निश्चेतन,
भगा भीरु जीवन-रण
सर-सर से उभर सुघर।
चलते चलते छुटकर
द्रुम की मधुलता उतर
विधुर स्पर्श कर पथ पर
युवा-युवतियों के सर।



१४-२-५०

कनक कसौटी पर कढ़ आया
स्वच्छ सलिल पर कर की छाया।
मान गये जैसे सुनकर जन
मन के मान अवश्रित प्रवचन,
जो रणमद पद के उत्तोलन
मिलते ही काया से काया।
चले सुपथ सत्य को संवरकर
उचित बचा लेने को टक्कर,
तजने को जीवित अविनश्वर,
भिलती जो माया से माया।
वाद-विवाद गांठकर गहरे
बायें सदा छोड़कर बहरे
कथा व्यथा के, गांव न ठहरे,
सत् होकर जो आया, पाया।



१४-२-५०

साध पुरी, फिरी धुरी।
छुटी गैल - छैल-छुरी।
अपने वश हैं सपने,
सुकर बने जो न बने,
सीधे हैं कड़े चने,
मिली एक एक कुरी।
सबकी आँखों उतरे
साख-साख से सुथरे,
सुए के हुए खुथरे
ऊपर से चली खुरी।
सजधजकर चले चले
भले - भले गले-गले
थे जो इकले - दुकले,
बातें थीं भली-बुरी।



१४-२-५०

पतित हुआ हूँ भव से तार;
दुस्तर दव से कर उद्धार।
तू इङ्गित से विश्व अपरिमित
रच-रचकर करती है अवसित
किस काया से किस छाया श्रित,
मैं बस होता हूँ बलिहार।
समझ में न आया तेरा कर
भर देगा या ले लेगा हर,
सीस झुकाकर उन चरणों पर
रहता हूँ भय से इस पार।
रुक जाती है वाणी मेरी,
दिखती है नादानी मेरी,
फिर भी मति दीवानी मेरी
कहती है, तू ठेक उतार।



१६-२-५०

पतित पावनी, गङ्गे !
निर्मल-जल-कल-रङ्गे !,
कनकाचल-विमल-धुली,
शत-जनपद-प्रगद-खुली,
मदन-मद न कभी तुली
लता-वारि-भ्रू-भङ्गे !
सुर-नर-मुनि-असुर-प्रसर
स्तव रव-बहु गीत-विहर
जल-धारा-धाराधर--
मुखर,सुकर--कर-अङ्गे !



१६-२-५०

९७

चरण गहे थे, मौन रहे थे,
विनय-वचन बहु-रचन कहे थे।
भक्ति-आंसुओं पद पखार कर,
नयन-ज्योति आरति उतार कर,
तन-मन-धन सर्वस्व वार कर,
अमर-विचाराधार बहे थे।
आस लगी है जी की जैसी
खण्डित हुई तपस्या वैसी,
विरति सुरति में आई कैसी,
कौन मान- उपमान लहे थे।
ठोकर गली गली की खाई,
जगती से न कभी बन आई,
रहे तुम्हारी एक सगाई,
इसी लिए कुल ताप सहे थे।



१७-२-५०

९८

विपद्-भय-निवारण करेगा वही सुन,
उसी का ज्ञान है, ध्यान है मान-गुन।
वेग चल, वेग चल, आयु घटती हुई,
प्रमुद-पद की सुखद वायु कटती हुई;
जल्पना छोड़ दे जोड़ दे ललित धुन।
सलिल में मीन है मग्न, मनु अनिल में
सीखने के लिए ज्ञान है अखिल में,
विमल अनवद्य की भावना सद्य चुन।
अन्यथा सकल आराधना शून्य है,
मृत्तिका भाप है, पाप भी पुण्य है,
भेद की आग में व्यर्थ अब तो न भुन।

❀

१७-२-५०

९९

श्याम-श्यामा के युगल पद
कोकनद मन के विनिर्मद।
हृदय के चन्दन सुखाशय,
नयन के वन्दन निरामय,
निश्शरण के निर्गमन के
गगन-छाया-तल सदाश्रय,
उषा की लाली लगे दुख के
जगे के योग के गद।
नन्द के आनन्द के घन,
बाधना के साध्य-साधन,
शेष के अवशेष के फल
ज्योति के सम्वलित जीवन,
प्राण के आदान के बल,
मान के मन के वशम्वद।



१७-२-५०

१००

काम के छवि-धाम
शमन प्रशमन राम !
सिन्धुरा के सीस
सिन्दूर, जगदीश,
मानव सहित-कीश,
सीता-सती-नाम ।
अरि-दल-दलन-कारि,
शंकर, समनुसारि
पद-युगल-तट-वारि
सरिता, सकल याम ।
शेष के तल्प कल
शयन अवशेष-पल,
चयन-कलि-गन्ध-दल
विश्व के आराम ।



१७-२-५०

१०१

हे जननि, तुम तपश्चरिता,
जगत की गति, सुमति भरिता।
कामना के हाथ थक कर
रह गये मुख विमुख बक कर,
निःस्व के उर विश्व के सुर
बह चली हो तमस्तरिता।
विवश होकर मिले शङ्कर,
कर तुम्हारे है विजय वर,
चरण पर मस्तक झुकाकर
शरण हूँ, तुम मरण सरिता।



१७-२-५१

१०२

मुक्तादल जल बरसो, बादल,
सरिसर कलकलसरसो, बादल !
शिखि के विशिख चपल नर्तन वन,
भरे कुञ्जद्रुम षटपद गुञ्जन,
कोकिल काकलि जित कल कूजन,
सावन पावन परसो, बादल !
अनियारे दृग के तारे द्वय,
गगन-धरा पर खुले असंशय,
स्वर्ग उतर आया या निर्मय,
छबि छबि से यों दरसो, बादल !
बदले क्षिति से नभ, नभ से क्षिति,
अमित रूपजल के सुख मुख मिति,
जीवन की जित-जीवन संचिति,
उत्सुक दुख-दुख हरसो, बादल !



१४-८-५०

१०३

गगन गगन है गान तुम्हारा,
घन घन जीवनयान तुम्हारा।
नयन नयन खोले हैं यौवन,
यौवन यौवन बांधे सुनयन,
तन तन मन साधे मन मन तन,
मानव मानव मान तुम्हारा।
क्षिति को जल, जल को सित उत्पल,
उत्पल को रवि, ज्योतिर्मण्डल,
रवि को नील गगनतल पुष्कल,
विद्यमान है दान तुम्हारा।
बालों को क्रीड़ाप्रवाल हैं,
युवकों को तनु, कुसुम-माल हैं,
वृद्धों को तप, आलबाल हैं,
छुटा-मिला जप-ध्यान तुम्हारा।

१०४

बीन वारण के वरण घन
जो बजी वर्षित तुम्हारी,
तार तनु की नाचती उतरा
परी, अप्सरकुमारी ।
लूटती रेणुओं की निधि,
देखती निज देश वारिधि,
बह चली सलिला अनवसित
ऊर्मिला, जैसे उतारी ।
चतुर्दिक छन-छन, छनन-छन,
विना नूपुर के रणन-रण,
वीचि के फिर शिखर पर,
फिर गर्त पर, फिर सुध बिसारी ।

❀

१४-८-५०

१०५

घन आये घनश्याम न आये।
जल बरसे आँसू दृग छाये।
पड़े हिंडोले, धड़का आया,
बढ़ी पैंग, घबराई काया,
चले गले, गहराई छाया,
पायल बजे, होश मुरझाये।
भूले छिन, मेरे न कटे दिन,
खुले कमल, मैंने तोड़े तिन,
अमलिन मुख की सभी सुहागिन,
मेरे सुख सीधे न समाये।



१४-८-५०

१०६

किरणों की परियाँ मुसका दीं।
ज्योति हरी छाया पर छा दीं।
परिचय के उर गूंजे नूपुर
थिर चितवन से चिर मिलनातुर
विष की शत वाणी से विच्छुर
गांस गांस की फांस हिला दीं।
प्राणों की अञ्जलि से उड़कर
छा छा कर ज्योतिर्मय अम्बर
बादल से ऋतु समय बदल कर
बूंदों से वेदना बिछा दीं।
पादप-पादप को चेतनतर
कर के फहराया केतनवर,
ऐसा गाया गीत अनश्वर,
कण के तन की प्यास बुझा दीं।



१०७

तुम्हारी छांह है, छल है;
तुम्हारे बाल हैं, बल है।
दृगों में ज्योति है, शय है,
हृदय में स्पन्द है, भय है।
गले में गीत है, लय है,
तुम्हारी डाल है, फल है।
उरोरुह राग है, रति है,
प्रभा है, सहज परिणति है,
सुतनुता छन्द है, यति है,
कमल है, जाल है, जल है।



(१०८)

माँ अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-त्रास से वारो।
विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
व्याधि-शयन जर्जर मानवमन,
ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन
करुणाकरों उतारो, तारो।
पल्लव में रस, सुरभि सुमन में,
फल में दल, कलरव उपवन में,
लाओ चारु-चयन चितवन में,
स्वर्ग धरा के कर तुम धारो।



१०६

तपन से घन, मन शयन से,
प्रातजीवन निशि-नयन से।
प्रमद आलस से मिला है,
किरण से जलरुह किला है,
रूप शङ्का से सुघरतर
अदर्शित होकर खिला है,
गन्ध जैसे पवन से, शशि
रविकरों से, जन अयन से।



१५-८-५०

११०

चलीं निशि में तुम, आई प्रात;
नवल वीक्षण, नवकर सम्पात।
नूपुर के निक्वण कूजे खग,
हिले हीरकाभरण, पुष्प मग,
साँस समीरण, पुलकाकुल जग,
हिलते पग जलजात।



१११

तपी आतप से जो सित गात,
गगन गरजे घन, विद्युत पात।
पलटकर अपना पहला ओर,
बही पूर्वा छू छू कर छोर;
हुए शीकर से निश्शर कोर,
स्निग्ध शशि जैसे मुख अवदात।

